



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2020; 6(3): 502-504
www.allresearchjournal.com
 Received: 18-01-2020
 Accepted: 22-02-2020

डॉ. देवेन्द्र कुमार आजाद
 इतिहास विभाग, एल. सी. एस.
 कॉलेज, दरभंगा, बिहार, भारत

1857 ईस्वी के क्रांति का ब्रिटिशकालीन भारत पर प्रभाव

डॉ. देवेन्द्र कुमार आजाद

सारंश

भारत में 1757 में ब्रिटिश सत्ता स्थापित होने के समय से ही कम्पनी की आर्थिक नीतियों और कुशासन के विरुद्ध समय-समय पर पीड़ित नागरिकों ने लगातार प्रतिरोध या विद्रोह किए, जो भावी संकट के संकेत थे। इन विद्रोहों का नेतृत्व उन्हीं लोगों द्वारा किया गया, जिनके हितों पर अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा कुठाराघात किया गया। इन विद्रोहों के अनुयायी, शोषित किसान, दस्तकार, और राजाओं व नवाबों की विघटित सेनाओं के सिपाही थे। ये स्थानीय विद्रोह साधारणतया किसी विशेष विषयों और स्थानीय असंतोष के कारण होते थे और इनका दायरा सीमित हुआ करता था। वे इस कारण सार्वजनिक भी कहे जा सकते हैं कि उस क्षेत्र या राज्य के विभिन्न वर्ग अंग्रेजी राज्य की किसी न किसी नीति से किसी-न-किसी रूप में पीड़ित थे। भारतीय समाज की इस परिस्थिति में भारत में राष्ट्रीय भावना और राष्ट्रीय आंदोलन का जन्म हुआ। भारतीय समाज के नये पुराने विभिन्न वर्गों के साथ ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का विरोध था। इनमें सबसे महत्वपूर्ण विरोध भारत के नवोदित बुर्जुआ वर्ग और ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग के बीच था। भारतीय बुर्जुआ वर्ग के कदम-कदम पर इस ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही थी। ऐसी स्थिति में भारतीय बुर्जुआ वर्ग ने पहले कुछ प्रशासनिक सुधारों और अधिकारों की माँग उठाई और धीरे-धीरे उसमें वृद्धि होती गई।

प्रस्तावना

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा समय-समय पर अपनायी गई भारत विरोधी राजनीति, प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक नीतियों और कुशासन के परिणामस्वरूप भारत में गरीबी तथा भुखमरी फैल चुकी थी। इस स्थिति से उबरने के लिए अंग्रेजी शासकों ने कोई भी ठोस कार्य भारतीय जनता के हित में नहीं किए थे, जिसके परिणाम स्वरूप ही भारतीयों में असंतोष की भावना बढ़ती चली गयी। यह देशव्यापी असंतोष की भावना 1857 के विद्रोह के रूप में व्यक्त हुई जिसमें भारतीयों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंतिम गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग ने फरवरी 1856 में भारत आते समय कहा था कि 'मैं चाहता हूँ कि मेरा कार्यकाल भारत में शांति पूर्ण हो। मैं नहीं भूल सकता कि भारत के गगन में जो अभी शांत है, कभी भी छोटा-सा बादल, चाहे वह एक हाथ जितना ही क्यों न हो, निरंतर विस्तृत होकर फट सकता है, जो हम सबको तबाह कर सकता है।

लार्ड कैनिंग के भारत आते ही उसकी यह आशंका सही साबित हुई जब यह असंतोष सन् 1857 के विद्रोह के रूप में समूचे भारत में फैला। अंग्रेजों की निरंतर आर्थिक शोषण की नीतियों ने भारतीयों को अत्यधिक प्रभावित किया था, जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे उनके असंतोष की भावना चरम-सीमा पर पहुँच गयी। गरीबी, भुखमरी और आर्थिक शोषण ने उनकी हालत दयनीय कर दी। किसानों की हालत दयनीय थी। ग्रामीण समुदाय की विशेषतायें-आर्थिक निर्भरता, स्वशासन का संगठित स्वरूप, स्थिरता, आत्म सुरक्षा व परस्पर सहयोग की भावना समाप्त होती जा रही थी।

1857 के पूर्व ब्रिटिश राज के विरुद्ध विद्रोह

भारत में 1757 में ब्रिटिश सत्ता स्थापित होने के समय से ही कम्पनी की आर्थिक नीतियों और कुशासन के विरुद्ध समय-समय पर पीड़ित नागरिकों ने लगातार प्रतिरोध या विद्रोह किए जो भावी संकट के संकेत थे। इन विद्रोहों का नेतृत्व उन्हीं लोगों द्वारा किया गया, जिनके हितों पर अंग्रेजी साम्राज्य द्वारा कुठाराघात किया गया। इन विद्रोहों के अनुयायी, शोषित किसान, दस्तकार, और राजाओं व नवाबों की विघटित सेनाओं के सिपाही थे। ये स्थानीय विद्रोह साधारणतया किसी विशेष विषयों और स्थानीय असंतोष के कारण होते थे और इनका दायरा सीमित हुआ करता था। वे इस कारण सार्वजनिक भी कहे जा सकते हैं कि उस क्षेत्र या राज्य के विभिन्न वर्ग अंग्रेजी राज्य की किसी न किसी नीति से किसी-न-किसी रूप में पीड़ित थे।

स्थानीय नागरिक विद्रोहों का प्रारंभ बंगाल और बिहार में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के समय से ही प्रारंभ हो गया था। 1763 से 1800 के मध्य सन्यासी विद्रोह, 1766 से 1772 के बीच बंगाल और बिहार में चूआर विद्रोह। दक्षिण भारत में तमिलनाडू के पोलिंगारों के 1790 में और 1805 में

Corresponding Author:

डॉ. देवेन्द्र कुमार आजाद
 इतिहास विभाग, एल. सी. एस.
 कॉलेज, दरभंगा, बिहार, भारत

त्रावनकोट के पंथी विद्रोह हुए। इसी भाँति 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के भी भारत में विभिन्न विद्रोह हुए। अनेक जन जातियों ने कम्पनी की आर्थिक नीतियों और कुशासन के विरुद्ध समय-समय पर विद्रोह किये। 1818 से 1820 के मध्य भीलों, 1820 के राजस्थान के भेड़ों, 1831 में सन्यालों में जातीय संघर्ष, 1846 में उड़ीसा के खोड़ों, 1824-1828 तक और 1839 व 1849 में गुजरात के कोलियों और 1855 से 1857 के बीच बिहार में सन्याल विद्रोह शोषण और कुशासन तथा प्रतिबंध के प्रतिफल थे। उत्तर भारत भी इन विद्रोहों से अछूता नहीं था, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और हरियाणा के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में किसानों कास्तकारों और ताल्लुकदारों में भी सशस्त्र विद्रोह हुए। 1814-1817 में अलीगढ़ के ताल्लुकदारों और 1842 में सागर के बुंदेलों ने ब्रिटिश राज के विरुद्ध हथियार उठाये और 1852 में खान देश (वर्तमान बुरहानपुर) में विद्रोह हुये। 1848-49 का द्वितीय पंजाब युद्ध भी जनता और सेना का विद्रोह था।

अनेक अंग्रेज इतिहासकारों ने इन विद्रोहों के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ये सभी विद्रोह जन जातियों के सरदारों, रियासतों के जमीन्दारों अथवा सामन्तों और उनके अनुयाइयों द्वारा अपने स्वार्थों के लिए ही किये गये थे तथा उनका अपने अनुयाइयों पर इतना अधिक प्रभाव नहीं था कि वे उनके कहने में आकर विद्रोह कर देते थे। परन्तु उनका यह तर्क, सही प्रतीत नहीं होता, क्योंकि 1857 के पूर्व के विद्रोह ब्रिटिश राज्य की आर्थिक नीतियों तथा कुशासन के प्रतिफल थे।

जैसा कि ब्राइट ने कहा है कि 'उक्त प्रश्न पर राष्ट्र की आत्मा अदमनीय रूप से जग उठी और उसने ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त करने का निर्णय किया। प्रधानमंत्री लार्ड पामस्टन ने 12 फरवरी, 1858 को हाउस ऑफ कामन्स में विधेयक पेश करते हुये एक स्मरणीय वक्तव्य दिया और द्वैध शासन व्यवस्था का अन्त करने के कारणों पर प्रकाश डालते हुये कहा कि हमारी राजनीतिक व्यवस्था का सिद्धान्त यह है कि सारे शासन कार्य के लिए मंत्रिमण्डल का उत्तरदायित्व हो- पार्लियामेंट के प्रति उत्तरदायित्व, जनमत के प्रति उत्तरदायित्व, राजसत्ता के प्रति उत्तरदायित्व, किन्तु भारतीय प्रशासन की बागडोर एक ऐसे निकाय के हाथों में है जो संसद के प्रति उत्तरदायी नहीं है और राज्य सत्ता में नियुक्त भी नहीं किया, किन्तु जिसे कुछ ऐसे व्यक्तियों ने चुना है, जिनका भारत से केवल इतना ही सम्बन्ध है कि कुछ पूँजी में उनकी हिस्सेदारी है।

1858 के अधिनियम द्वारा संचालक मण्डल, नियंत्रण बोर्ड एवं गुप्त समिति को समाप्त कर दिया गया। कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स और बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सारे अधिकार एवं कार्य भारत सचिव को हस्तांतरित कर दिए गये जो ब्रिटिश संसद और ब्रिटिश मंत्रिमण्डल का सदस्य होता था। भारत सचिव की सहायता के लिए भारतीय परिषद् की स्थापना की गई। इसके सदस्यों की संख्या 15 निश्चित की गई। भारतीय सचिव को वेतन भारतीय राजस्व से देने की व्यवस्था की गई। भारत सचिव मंत्रिमण्डल का सदस्य होने के कारण अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश संसद के लिए उत्तरदायी था।

1858 के अधिनियम के द्वारा भारत में भारतीय गवर्नर-जनरल को भारत सचिव की आज्ञानुसार कार्य करने के अधिकार प्रदान किये गये। गवर्नर जनरल को भारत में ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करने के कारण उसे वायसराय भी कहा गया। गवर्नर जनरल के कार्यों में परामर्श के लिये परिषद् की स्थापना की गयी। परिषद् के सदस्यों की स्थिति मंत्रिमण्डल के मंत्रियों के समान थी। भारतीयों के असंतोष को समाप्त करने तथा 1858 के अधिनियम को व्यवहारिक रूप प्रदान करने के उद्देश्य से लॉर्ड कैनिंग की भारत में पुनः वाइसराय के रूप में नियुक्ति की गयी और उसे शासन का सर्वोच्च अधिकारी बनाया गया।

1 नवम्बर 1858 ई0 को इलाहाबाद में एक दरबार आयोजित

किया गया, जिसमें ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया की घोषणा को पढ़कर सुनाया गया। घोषणा के द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी के सभी असैनिक और सैनिक पदाधिकारियों की नियुक्ति को पहले की भाँति मान्यता दे दी गई इसके द्वारा भारतीय नरेशों के साथ हुई संधियों समझौतों को यथावत स्वीकार किया गया। ब्रिटिश शासन ने अब भारत में राज्य विस्तार न करने का आश्वासन दिया गया। ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के अधिकारों, सम्मानों व पदों के प्रति अपनी आस्था प्रकट की। गोद लेने की प्रथा को स्वीकार किया गया। इस घोषणा में भारतीय प्रजा को यह आश्वासन दिया गया कि उनके धार्मिक मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा और सभी के साथ समानता का व्यवहार किया जायेगा। उच्च पदों की नियुक्ति के लिये योग्यता का आधार स्वीकार किया गया। इस घोषणा के द्वारा यह आश्वासन दिया गया कि महारानी की सरकार सार्वजनिक भलाई, लाभ और उन्नति के लिए प्रयत्न करेगी जिससे उसकी समस्त प्रजा का हित हो। घोषणा के द्वारा प्राचीन परम्पराओं के प्रति सम्मान और संरक्षण की बात कही गयी। हिंसात्मक कार्यों में लगे अपराधियों को छोड़कर शेष सबको क्षमादान की घोषणा की गयी। अतः जहाँ एक ओर यह कहा जा सकता है कि सैद्धांतिक रूप से यह घोषणा महत्वपूर्ण थी वहीं दूसरी ओर व्यवहारिक दृष्टि से केवल एक शब्द जाल मात्र थी। क्योंकि इस घोषणा में किये गये वायदों का उल्लंघन आगे के वर्षों में अंग्रेजी सरकार द्वारा अपनायी गई नीतियों से भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। यह घोषणा संभवतः भारतीय जनता को भुलावे में रखने के लिए की गई थी। इससे भारतीय जन जीवन को उन्नत करने की दिशा में कोई सार्थक प्रयास नहीं किये गये, बल्कि व्यवहारिक रूप में सरकार की नीति, आक्रामक, हिंसात्मक, तर्क विरोधी, पक्षपात पूर्ण और सतत् हस्तक्षेप की ही चलती रही।

इस घोषणा ने भारतीय राजाओं को अत्यधिक प्रभावित किया। उन्होंने इससे राहत महसूस की साथ ही इस घोषणा से शासकीय प्रभाव भी बढ़ा। प्रशासन की दृष्टि से ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन की समाप्ति से इसके महत्व को स्पष्ट करते हुये यह कहा जा सकता है कि विद्रोह की समाप्ति का जितना श्रेय अंग्रेज अधिकारियों व सैनिकों को दिया जा सकता है, तो उससे अधिक नहीं तो उसके समान ही, महारानी विक्टोरिया के घोषणा पत्र को भी देना पड़ेगा। इस दृष्टि से इस घोषणा को भारतीयों के प्रति न्याय अथवा उनकी उन्नति की भावना से प्रेरित नहीं कहा जा सकता है।

अंग्रेज शासकों ने यह अनुभव किया कि 1857 ई0 के भारतीय विद्रोह का मुख्य कारण "शासकों और शासितों के बीच सम्पर्क के अभाव का होना था। इस बात की पुष्टि सर सैयद अहमद के इस कथन से होती है कि परिषदों में भारतीयों को शामिल न करने की नीति ने सरकार को जनमत जानने के अवसर से वंचित कर दिया था। साथ ही इस नीति के परिणाम स्वरूप ऐसी ही कोई सम्पर्क रेखा न थी जिसके माध्यम से सरकार और भारतीय जन मानस के संदेह या भ्रम को दूर किया जा सके। सन् 1860 ई0 के अपने लेख में सर वार्टल फेयर ने परिषदों में भारतीयों को लेने पर जोर दिया था। भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने का प्रश्न ब्रिटिश पार्लियामेंट में सन् 1858 में भी उठाया गया था किन्तु सरकार द्वारा इसका विरोध करने के कारण इस ओर कोई कदम नहीं उठाया जा सका।

अतएव इस कमी को दूर करने के उद्देश्य से सन् 1861 ई0 में 1861 का भारतीय कौंसिल एक्ट पारित किया गया। 1861 के अधिनियम में गवर्नर जनरल को विधान के कार्य या विधायी कार्यों में भारतीयों को साथ लेने का अधिकार प्रदान किया गया। गवर्नर जनरल की केन्द्रीय कार्यपालिका परिषद् का विस्तार किया गया और इस रूप में उसे इस्पिरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल कहा जाने लगा। गवर्नर जनरल को अपनी केन्द्रीय कार्यपालिका परिषद् में छः से बारह सदस्यों की वृद्धि करने का अधिकार दिया

गया। इनमें से कम से कम आधे सदस्य गैर सरकारी होने थे। गैर सरकारी सदस्य भारतीय या अंग्रेज कोई भी हो सकते थे। इस अधिनियम के द्वारा प्रांतीय सरकारों को पुनः को स्थानीय या प्रांतीय विषयों के सम्बन्ध में कानून निर्माण का अधिकार दिया गया और इस कार्य के लिये गवर्नर को अपनी कार्यपालिका परिषद् में चार से आठ सदस्यों तक की नियुक्ति का अधिकार दिया गया जिनमें से कम से कम आधे सदस्य गैर सरकारी भारतीय होना आवश्यक था।

भारत के संवैधानिक इतिहास में 1861 में भारतीय परिषद् अधिनियम का महत्वपूर्ण स्थान है। इस अधिनियम के साथ सहयोग की नीति, स्वसपबल विवेकपंजपवदद्ध का प्रारंभ हुआ तथा भारतीयों को प्रशासन में भाग लेने का अवसर प्रदान किया गया। वास्तव में इसे आधुनिक काल का भारतीय इतिहास में प्रतिनिधित्व प्रणाली का प्रारंभ कहा जा सकता है, जिसमें भारतीयों को विधि-निर्माण में स्थान दिया जाने लगा। इसके द्वारा विधान परिषद् के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण की उस नीति का प्रारंभ हुआ जिसके फलस्वरूप अन्य प्रान्तों को सन् 1937 में आन्तरिक स्वायत्तता प्राप्त हो सकी।

परन्तु 1861 के अधिनियम द्वारा निर्मित विधान परिषदें केवल नाम मात्र की विधायी परिषदें थीं। वे केवल कानून बनाने वाली परामर्श समितियाँ मात्र थी। उनकी विधायी शक्ति बहुत सीमित थी, इनमें अधिकांशतः राजा महाराजा या धनवान व्यक्ति की ही नियुक्ति की जाती थी, जो भारतीय जनमत को व्यक्त नहीं कर सकते थे, इनके अधिकार भी सीमित थे। इसलिए भारतीय इस अधिनियम से संतुष्ट नहीं हो सके। इस प्रकार इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात भी भारत सरकार का स्वरूप वैसा ही निरंकुश रहा। जो 1858 के पूर्व था। ब्रिटिश सरकार यह कदम सुधारवादी नहीं था, बल्कि एक जानबूझकर अपनाई जाने वाली नीति थी। भारत मंत्री चार्ल्स वूड ने 1861 में ब्रिटिश संसद में 1861 के इंडियन काँग्रेस को पेश करते हुये कहा था, सभी अनुभव हमें यही सिखाते हैं कि जहाँ कोई प्रबल जाति दूसरी जाति पर शासन करती है, वहाँ सरकार का सबसे नरम रूप भी निरंकुश तंत्र होता है।

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का सबसे अधिक प्रभाव सामाजिक संरचना पर भी पड़ा। इंग्लैण्ड को भारत में दोहरे लक्ष्य की प्राप्ति करना था। उसका एक लक्ष्य विनाशात्मक और दूसरा रचनात्मक था। प्राचीन एशियाई समाज का उन्मूलन कर उसकी जगह पाश्चात्य सभ्यता की भौतिक नींव डालना। अंग्रेजों ने हिन्दू सभ्यता और उद्योगों को समाप्त कर हिन्दू सभ्यता का विनाश किया। महान मुगलों के जमाने से ही अधिक संगठित और व्यापक राजनीतिक एकता इस नये जीवन की पहली शर्त थी। जमींदारी और रैयतवारी दो भिन्न रूप हैं, जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व के, जिसका एशियाई समाज में नितान्त अभाव रहा है। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में देखा जा सकता है। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव ने लोगों के विचारों में उथल-पुथल मचा दी। नये ज्ञान और विचारों ने सामाजिक प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव को स्वीकारते हुये गोपाल कृष्ण गोखले ने भी लिखा है कि शिक्षा के द्वारा ही महत्वपूर्ण रूपान्तर हो सका।

निष्कर्ष

1857 ई० का देशव्यापी विद्रोह भारतीय इतिहास की युग परिवर्तनकारी घटना थी। वह एक युग की समाप्ति और एक नये युग का प्रारम्भ था। इस घटना ने भारत में ब्रिटिश राज्य को हिला दिया। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय प्रशासकीय ढाँचे में आधार भूत परिवर्तन हुये। संवैधानिक दृष्टि से मुगल शासन हमेशा के लिए समाप्त हो गया। भारत में एक शताब्दी से शासन करने वाली ईस्ट इंडिया कम्पनी को समाप्त कर दिया गया तथा भारतीय प्रशासन को कम्पनी से छीन कर सम्राट को हस्तांतरित

कर दिया गया। अब भारत का प्रशासन क्राउन द्वारा और उसके नाम से होने लगा। यह परिवर्तन 1858 में एक अच्छी सरकार स्थापित करने के लिए 1858 के अधिनियम और महारानी विक्टोरिया की घोषणा से प्रकट हुआ।

संदर्भ

1. एल० पी० शर्मा – आधुनिक भारत, 1988 पृ-282.
2. एस० वी० चौधरी थ्योरीज ऑफ दी इण्डियन म्यूटनी, 1986 पृ-173.
3. एस० एन० गुप्ता, हिस्ट्री ऑफ नेशनल म्यूमेन्ट, 1978 पृ-3.
4. वही, पृ 12
5. मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, 26 जनवरी, 1955 का प्रसारण।